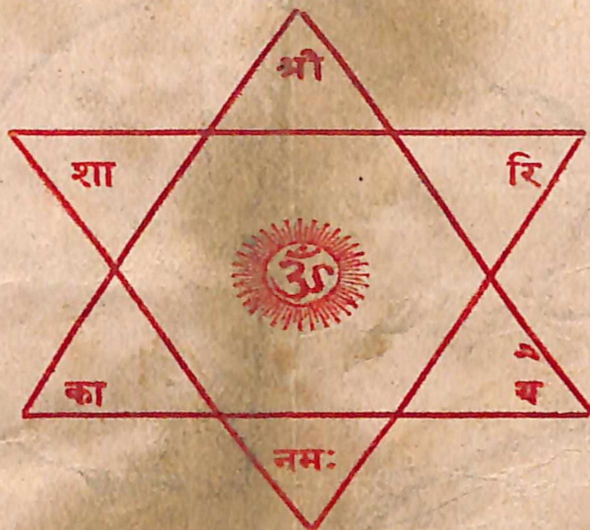


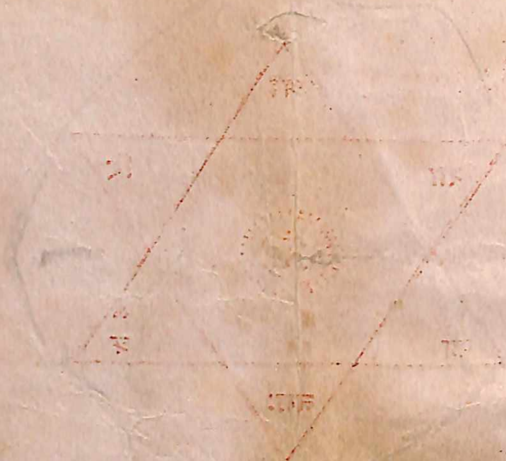

होरा अष्टमी के उत्सव पर

# श्री श्री जगम्बा शारिका चक्रेश्वर संस्था

## हारीपर्वत श्रीनगर

श्री चक्रेश्वर भवन

मूल्य 12 नये पैसे



# श्री श्री जगदम्बा शारिका चक्रेश्वर संस्था हारीपर्वत श्रीनगर



जय भगवति देवि नमो वरदे,
जय पाप विनाशिनि बहु फलदे।
जय शुम्भनिशुम्भ कपाल धरे,
प्रणमामि तु देवि नरार्तिहरे ॥ १ ॥
जय चन्द्रदिवाकरनेत्रधरे,
जय पावकभूषित वक्त्र वरे।
जय भैरवदेह-निलीन परे,
जय अन्धक दैत्यविशेष करे ॥२॥
जय महिषविमर्दिनि शूल करे
जय लोक समस्तक पाप हरे।
जय देवि पितामह विष्णु नते

जय भास्कर–शक्रशिरोऽवनते ।।३।।
जय षण्मुख सायुध–ईशनुते
जय सागर गामिनि शाम्भुनुते ।
जय दुःखदरिद्र विनाश करे
जय पुत्र कलत्र विवृद्धि करे ।।४।।
जय देवि समस्त शरीर धरे
जय नाकविदर्शिनि दुंख हरे ।
जय व्याधि विनशिनि मोक्ष करे
जय वाञ्छितदायिनि सिद्धिवरे ।।५।।

[ अर्थ ]

हे वरदायिनी देवी, हे भगवती ! हे पापों को नष्ट करने वाली और अनन्त फल देने वाली देवी ! तुम्हारी जय हो। हे शुम्भ–निशुम्भ के मुण्डों को धारण कर वाली देवी ! तुम्हारी जय हो। हे मनुष्यों की पीडा हरने वाली देवी। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं ।। १ ।।

हे सूर्य–चन्द्रमा रूपी नेत्रों को धारण करने वाली ! तुम्हारी जय हो। हे अग्नि के समान देदीप्यमान मुश से शोंभित होंने वाली ! तुम्हारी जय हो। हे भैरव–शरीर में

लीन रहने वाली और अन्धकासुर का शोषण करने वाली देवी, तुम्हारी जय हो, जय हो ॥२॥

हे महिषासुर का मर्दन करने वाल, शूलधारिखी और लोक के समस्त पापों को दूर करने वाली भगवती ! तुम्हारी जय हो। ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और इन्द्र से नमस्कृत होने वाली हे देवी! तुम्हारी जय हो, जय हो ॥३॥

सशस्त्र शंकर और कार्तिकेय जी के द्वारा वन्दित होने वाली देवी ! तुम्हारी जय हो। शिव के द्वारा प्रशंसित एवं सागर में मिलने वाली गंगारूपिनो देवी ! तुम्हारी जय हो दुःख और दरिद्रता का नाश तथा पुत्र–कलत्र की वृद्धि करने वाली हे देवी ! तुम्हारी जय हो, जय हो ॥४॥

हे देवी ! तुम्हारी जय हो। तुम समस्त शरीरों को धारण करने वाली, स्वर्गलोक का दर्शन कराने वाली और दुःख–हारिणी हो। हे व्याधिनाशिनी देवी ! तुम्हारी जय हो। मोक्ष तुम्हारे करतलगत है। हे मनो वांछित फल देने वाली अष्टसिद्धियों से सम्पन्न परा देवी, तुम्हारी जय हो ॥५॥

न तातो न माता न बन्धुर्न न दाता
न पुत्रो न पुत्री न भृत्यो न भर्ता ।
न जाया न विद्या न वृत्तिर्ममैव
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥१॥
भवाब्धावपारे महा दुंखभीरुः
पपात प्रकामी प्रलोभी प्रमत्तः ।
कुसंसार पाश प्रबद्धः सदाहं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥२॥
न जानामि दानं न च ध्यान योगं
न जानामि तन्त्रं न च स्तोत्र मंत्रम् ।
न जानामि पूजां न च न्यास–योगं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥३॥
न जानामि पुण्यं न जानामि तर्थं
न जानामि मुक्तिं लयं वा कदाचित् ।
न जानामि भक्तिं व्रतं वापि
मातर्गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥४॥
कुकर्मी कुसङ्गी कुबुद्धि कुदासः
कुलाचार हीनः कदाचार लीनः ।

कुदृष्टिः कुवाक्य प्रबन्धः सदाहं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥५॥
प्रजेशं रमेशं महेशं सुरेशं
दिनेशं निशीश्वरं वा कदाचित।
न जानामि चान्यत सदाहं शरण्ये
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥६॥
विवादे विषादे प्रमादे प्रवासे
जले चालने पर्वते शुत्रमध्ये।
अरण्ये शरण्ये सदा मां प्रपाहि
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥७॥
अनाथो दरिद्रो जरा – रोग – युक्तो
महाक्षीण दीनः सदा जाड्य वक्त्रः।
विपत्तौ प्रविष्टः प्रणष्टः सदाहं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भावानि ॥८॥

[अर्थ]

हे भवानी! पिता, माता, भा, दाता, पुत्र, पुत्री, भृत्य स्वामी, स्त्री, विद्या और बृत्ति–इन में से कोई भी मेरा नहीं है। हे देवी, एक मात्र तुम्ही मेरी गति हो ॥१॥

मैं अपार भवसागर में पडा हूं। महान दुंखों से भयभीत हूं। कामी, लोभी मतवाला तथा घृणायोग्य संसार के बन्धनों से बंधा हुआ हूं। हे भवानी! अब एकमात्र तुम्ही मेरी गति हो ॥२॥

हे देवी! न तो मैं दान देना ज़ानता हूं और न ध्यान-मार्ग का ही मुझे पता है। तन्त्र और स्तोत्र मंत्र का भी मुझे ज्ञात नहीं है। पूजा तथा न्यास आदि की क्रियाओं से तो मैं एक दम कोरा हूं। अब एक मात्र तुम्हीं मेरी गति हो ॥३॥

न पुण्य जानता हूं, न तीर्थ, न मुक्ति का पता है न लय का। हे माता! भक्ति और व्रत भी मुझे ज्ञात नहीं हैं। हे भवानी, अब केवल तुम्ही मेरा सहारा हो ॥४॥

मैं कुकर्मी, बुरी संगति में रहने वाला दुबुर्द्धि, दुंष्ट दास कुलोंचित सदाचार से हीन, दुराचार परायण, कुत्सित दृष्टि रखने वाला, और सदा दुर्वचन बोलने वाला हूं। हे भवानी मुझ अधम की एकमात्र तुम्हीं गति हो ॥५॥

मैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य किसी भी देवाता को नहीं जानता हूं। हे शरण देने वाली

भवानी! एक मात्र तुम्ही मेरी गति हो ॥६॥

हे शरण्ये! तुम विवाद, विषाद, प्रमाद, परदेश, जल, अनल, पर्वत, वन तथा शत्रुओं के मध्य में सदा ही मेरी रक्षा करो। हे भवानी! एक मात्र तुम्हो मेरी गति हो ॥७॥

हे भवानी! मैं सदा से ही अनाथ, दरिद्र, जरा–जीर्ण रोगी रोगी, अत्यन्त दुर्बल, दीन, गूंगा, विपद्ग्रस्त और नष्ट हूं। अब तुम्हीं एकमात्र मेरी गति हो ॥८॥

भवानि स्तोतुं त्वां प्रभवति चतुर्भिर्न वदनैः
प्रजानामीशानस्त्रिपुर मथनः पञ्चभिरपि।
न षड्भिः सेनानीर्दश शत मुखैरप्यहि पति–
स्तदान्येषां केषां कथय कथमस्मिन्नव सरः ॥१॥
महान्तं विश्वासं तव चरण पंके रुह युगे
विधायान्यन्नैवाश्रितमिह मय दैवतमुमे।
तथापि त्वच्चेतो यदि मय न जायति सदयं
निरालम्बो लम्बोदर जननि कं यामि शरणम् ॥२॥
अयः स्पर्शे लग्नं सपदि लभते हेमपदवीं
यथा रथ्या–पाथः शुचि भवति गङ्गौघमिलितम्।
तथा तत्पापैरतिमलिनमन्तर्मम यदि

त्वयि प्रेम्णासक्तं कथमिव न जायेत विमलम् ॥३॥
न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुति-कथा।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेश हरणम् ॥४॥
जगन्मातर्मातस्तव चरण-सेवा न रचिता
न वां दत्त देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥५॥
पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलः
परं तेषां मध्ये विरल तरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितामिदं नो तव शिवि
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥६॥
आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं
करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः
क्षुधातृषार्ता जननी स्मरान्ति ॥७॥
जय देवि जय देवि जय मोहनरूपे।

मामिह जननि समुद्धर पतितं भवकूपे ॥
जय देवि० ॥८॥

हे भवानी! प्रजापति ब्रह्माजो अपने चार मुखों से भी तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं। त्रिपुर विनाशक महादेवजी पांच मुखों से भी तुम्हारा स्तवन नहीं कर सकते। कार्तिकेय जी तो छः मुखों के रहते हुये भी असमर्थ हैं। इन इने गिने मुख वालों की तो बात ही क्या है। नागराज शेश हज़ार मुखों से भी तुम्हारा गुणगान नहीं कर पाते। फिर तुम्ही बताओ, जब इक की यह दशा है तो दूसरे किस प्रकार तुम्हारी स्तुति का अवसर प्राप्त हो सकता है? ॥१॥

हे लम्बोदर गणेश को जन्म देने वाली उमा! मैं ने तुम्हारे युगल चरणारबिन्दों में बहुत बडा विश्वास रख कर किसी अन्य देवता का आश्रय नहीं लिया, तथापि यदि तुम्हारा चित मुझ पर सदय न हो तो अब मैं किस की शरण जाऊंगा? ॥२॥

जिस प्रकार लोहा पारस से छू जाने पर तत्काल सोना बन जाता है और गलियों [ के नाले ] का जल गङ्गा जी में पड कर पवित्र हो जाता है। उसी प्रकार भिन्न २ पापों

से मलीन हुआ मेरा अन्तः करण यिदि प्रेम पूर्वक तुम में आसक्त हो गया, तो वह कैसे निर्मल नहीं होगा ? ॥३॥

हे मातां! मैं तुम्हारा मंत्र, स्तुति, आवाहन, ध्यान, स्तुतिकथा, मुद्रा और विलीपन कुछ भी नहीं जानता; सब प्रकार के क्लेशों को दूर करने वाली आप की शरण में प्राप्त होना जानता हूं ॥४॥

हें जगदम्बा! हे माता! मैंने तुम्हारे चरणों की सेवा नहीं की, अथवा तुम्हारे लिए प्रचुर धन भी समर्पण नहीं किया। तो भी मेरे ऊपर यदि तुम ऐसा अनुपम स्नेह रखती हो, तो यह सच ही है कि पुत्र तो कुपुत्र हो जाता है, पर माता कुमाता नहीं होती ॥५॥

मां! भूमण्डल में तुम्हारे सरल पुत्र अनेकों हैं, परन्तु उन में एक मैं विरला ही बडा चंचल हूं। तो भी हे शिवे मुझे त्याग देना तुम्हें उचित नहीं। क्योंकि पुत्र कुपोत्र हो जाता है, पर माता कुमाता नही होती ॥६॥

हें दया सागर रूपिणी शिवे! जब मैं किसी आपत्ति में पडता हूं। तो तुम्हारा ही स्मरण करता हूं। इसे तुम

मेरी दुष्टता मत समझना ! क्योंकि भूखे प्यासे बालक अपनी मां को ही याद किया करते हैं ॥७॥

हे देवी ! तुम्हारी जय हो, जय हो, हे मनोहर रूपवाली तुम्हारी जय हो, हे माता ! संसारकूप में पडे हुये मेरा उद्धार करो ॥८॥

श्री चक्रेश्वर भवन होरा अष्टमी के उतसव पर

# आरथी

जग जननी जय ! जय !! (मां जगजननी जय ! जय !!
भय–हारिणि, भवतारणी, भव–भामिनि जय ! जय !! जग०
तू ही सत–चित–सुखमय शुद्ध ब्रह्म–रूपा ।
सत्य सनातन सुन्दर पर–शिव सूर–भूपा ॥ जग०
आदि अनादि अनामय अविचल अविनाशी ।
अमल अनन्त अगोचर अज आनन्द राशी ॥ जग०
अविकारी, अघहारी, अकल, कलाधारी ।
कर्त्ता विधि, भर्त्ता हरि, हर संहार कारी ॥ जग०
तू विधि–वधू, रमा, तू उमा, महामाया ।
मूलप्रकृति विद्या तू, तू जननी जाया ॥ जग०

राम, कृष्ण तू, सीता व्रजरानी राधा ।
तू वाञ्छा कल्प द्रुम, हारिणि सब बाधा ॥ जग०
दश विद्या, नव दुर्गा, नाना शस्त्रकर ।
अष्टमातृका, योगिनि, नव नव रूप धरा ॥ जग०
तू परधामनिवासिनि, महाविलासिनि तू ।
तू ही श्मशान-विहारिणी, ताण्डव-लासिनी तू ॥ जग०
सुर-मुनि-मोहिनि सौम्या तू शोभाऽऽधारा ।
विवसन-विकट-सुरूपा, प्रलय मयी धारा ॥ जग०
तू ही स्नेह-सुधामयि, तू अति गरल मना ।
रत्न विभूषित , तू ही अस्थि-तना ॥ जग०
मूलधारनिवासिनि, इह-पर-सिद्धि प्रदे ।
कालातीता काली, कमला तू वरदे ॥ जग०
शक्ति शक्तिधर तू ही, नित्य अभेदमयी ।
भेदप्रदर्शिनि वाणी, कमले वेदत्रयी ॥ जग०
हमअति दीन दुखो मा. विपत जाल घेरे ।
हैं कपूत अति कपटो, पर बालक तेरे ॥ जग०
निज-स्वभाव-वश जननी, दयादृष्टि कीजै ।
करुणा कर करुणामयि, चरण--शरण दीजै ॥ जग०

प्रकाशन :— विभाग चक्रेश्वर भवन

मुद्रक: :— अलाईड प्रिन्टर्स रज़ीडनसी रोड

श्रीनगर,